SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

ढलती साँझ का सूरज़: किसान जीवन का यथार्थ और उम्मीद की किरण

सपना पेलपकर, पीएच–डी, हिंदी विभाग
शासकीय कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय खांडोला, गोवा, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Author

सपना पेलपकर, पीएच–डी
E-mail : sapanapelapker@gmail.com

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 07/02/2026
Revised on : 10/04/2026
Accepted on : 19/04/2026
Overall Similarity : 00% on 11/04/2026

Plagiarism Checker X - Report
Originality Assessment
0%
Overall Similarity

Date: Apr 11, 2026 (06:22 AM)
Matches: 0 / 3118 words
Sources: 0

Remarks: No similarity found, your document looks healthy.

Verify Report: Scan this QR Code

शोध सार

भारत एक कृषि प्रधान देश रहा है। प्राचीन काल में कृषि करना सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। जब वस्तु विनिमय की प्रणाली रही तब तक यह व्यवसाय भी समृद्ध रहा। धीरे–धीरे इस व्यवसाय में भारी बदलाव आते रहे जिसका परिणाम कृषकों पर होता रहा। सबसे पहले जो सार्वजनिक कृषि–भूमि थी वह निजी हो गयी। पीढ़ी दर पीढ़ी वह टुकड़ों में बँटती चली गयी। कृषि पर कर लगाया गया जिसको भरते–भरते कृषक निर्धन होते रहे और इसके परिणामस्वरूप आत्महत्या करने के लिए मजबूर हो गए। आज के उन्नत भारत में भी किसान की स्थिति में उतना बदलाव नहीं आया। कहीं न कहीं इसके लिए संपूर्ण व्यवस्था ही जिम्मेदार है। जो सभी का पेट भरने के लिए दिन रात एक करता है, उसके लिए दो समय का खाना भी नसीब न हो यह दुखद बात है। आज स्त्री विमर्श, किन्नर विमर्श, वृद्ध विमर्श, बाल विमर्श के साथ–साथ किसान विमर्श पर भी लिखा जा रहा है। इससे देशभर के किसानों की स्थिति सामने आ रही है। देश के अनेक राज्यों में अनेक भाषाओं में किसान से संबंधित अनेक समस्याएँ, उनकी पारिवारिक स्थिति, आर्थिक स्थिति से लोग अवगत हो रहे हैं। प्रेमचंद का 'गोदान' संजीव जी का 'फाँस' वीरेंद्र जैन का 'डूब', एस. आर. हरनोट का 'हिडिम्ब', राजू शर्मा का 'हलफ़नामा' मधु कांकरिया का 'ढलती साँझ का सूरज़' आदि उपन्यास किसान जीवन का यथार्थ चित्रण पाठक के सामने रखते हैं। इन सारे उपन्यासों में किसानों का जीवन, उनकी समस्याएँ, शोषण, समाज एवं राजनीति से उपेक्षित, अंधविश्वास, गरीबी, अशिक्षा, प्राकृतिक आपदाएँ, कर्ज़ का बोझ और ऐसी ही अनगिनत समस्याओं से गुजरते हुए इसके अंतिम उपाय के रूप में आत्महत्या तक की यात्रा का चित्रण मिलता है। आर्थिक तंगी से बाज़ आकर आत्महत्या के लिए किसानों का प्रवृत्त होना समाज के लिए कितना खतरनाक है! किसानों की ऐसी स्थिति को देखकर नवयुवक खेती को व्यवसाय के रूप में कैसे अपनाएँगे? ऐसे ही अनगिनत सवाल लेखकों ने अपने साहित्य में उठाए हैं। मधु कांकरिया का उपन्यास 'ढ़लती साँझ का सूरज' अपने आप में अनोखा उपन्यास है जिसमें लेखिका किसानों की कई समस्याओं की ओर पाठक का ध्यान खिंचती

है और नए युग के निर्माता भारतीय युवकों के द्वारा बहुत कुछ किए जाने की संभावनाओं की ओर दिशा निर्देश करती है।

मुख्य शब्द

किसान, आत्महत्या, फ़सल, बीज, शोषण, युवक.

उद्देश्य

प्राचीन काल से समकालीन समय तक किसानों की आत्महत्याओं का सिलसिला जारी है। आज जहाँ हम विज्ञान के क्षेत्र में मंगल तक पहुँच चुके हैं, वहाँ धरती पर जीनेवाले असंख्य जीवों का पेट पालनेवाले किसानों की स्थिति में आवश्यकता के अनुरूप सुधार लाने में असफल रहे हैं। उसके कारण जानना और किसानों की स्थिति में सुधार लाने के लिए सामान्य मनुष्य के द्वारा कौन से कदम उठाए जा सकते हैं यह समझने की कोशिश प्रस्तुत आलेख में की है।

साहित्य की समीक्षा

'ढ़लती साँझ का सूरज़' उपन्यास से संबंधित आलेख प्राप्त नहीं हुए। हिन्दीकुंज.कॉम की साईट पर मिली समीक्षा और यूट्युब पर 'बतकही' कार्यक्रम में डॉ. बिपिन द्वारा लिया गया साक्षात्कार से मिली जानकारी के आधार पर समीक्षा की गई हैं।

सबसे अधिक आबादी वाले हमारे देश में पारंपारिक व्यवसाय लगभग ख़तम हो चुके हैं। आधुनिक शिक्षा ने कई युवकों को न घर का रहने दिया न घाट का। शिक्षा पाने के बाद सिर्फ़ नौकरी करना की उनका काम हो गया। दसवी–बारहवी पढ़ने के बाद पारंपारिक व्यवसायों को स्वीकारना भी युवकों को शर्मनाक लगने लगा। शर्ट–पैंट पहनकर नौकरी करने में वह धन्यता महसूस करने लगा। ऐसे में हमारे गाँव के युवक शहरों में नौकरी करने चले गए। उच्च शिक्षित युवक अपने योग्य नौकरी न पाकर अपना नसीब आजमाने के लिए विदेश चले गए। आज भारत के अधिकतर घरों में सिर्फ़ बूढ़े ही रह गए हैं। इतनी बडी मात्रा में यह स्थलांतर क्यों हो रहा है, इसपर किसी ने नहीं सोचा है। गाँव से युवकों को शहरों में जाना पड़ा और शहरों से विदेशों मे! इतनी बड़ी भूमि और इतने सारे संसाधन होते हुए भी युवकों के जीवन में स्थानांतरण क्यों? यह सवाल सच में बड़ा सवाल है क्योंकि वह भारतीय युवकों से संबंधित है, जिनके हाथों में देश की धरोहर है।

आज बड़े पैमाने पर भारतीय युवक विदेशों में पढ़ने हेतु जाते हैं और आजीवन वहीं के बनकर रहते हैं। उपन्यास नायक अविनाश स्वयं को स्वीट्झर्लैंड में नौकरी पाकर धन्य समझने लगता है। वहाँ जाने के बाद भौतिक साधन जुटाने की होड़ में अपनी अकेली बूढ़ी माँ को जैसे भूल जाता है। फ़ोन पर खबरें तो होती हैं पर वापस आकर मिलना वह टालता रहता है। बीस साल बाद जब अपने दोस्त की माँ की मृत्यु की खबर सुनकर जैसे नींद से जग जाता है और अपनी माँ से मिलने की आकांक्षा से लौट आता है। वह सोचने लगता है कि विदेश जाकर उसने क्या पाया, जिस सफलता की, भौतिक सुख की खोज में वह गया था वह उसे मिला या जो सुख उसके जीवन में था वह भी खतम हो गया! "सफलता ही सब कुछ होती अम्मा तो आज मैं दुनिया का सबसे सुखी इनसान होता। पर मैं खुद को आज सबसे बदनसीब समझ रहा हूँ .. माँ से बिछुड़ा...वतन से उजड़ा. . अपनी भाषा से बिछुड़ा, अपनी हवा, धूप, पकवान, नदियों, समुद्र .... सबसे दूर, दोस्तों से छिटका... ज़िंदगी से उखड़ा।"[1] यह सोचते हुए वह अपनी माँ से मिलने चल पड़ता है। विदेश में जाकर बसे हुए युवक, अपनी इच्छा से ही जाते हैं ऐसा नहीं है, कई तो देश में स्थित अनेक समस्याओं से परेशान होकर विदेश जाने के लिए मजबूर हो जाते हैं। गरीबी, भ्रष्ट्राचार, राजनीति, गंदगी, दूसरों की अपने जीवन में दखलंदाजी, बेरोजगारी, अपनी शिक्षा के अनुकूल नौकरी न मिलना आदि कारण भी उनको अपने देश से, अपने गाँव से दूर जाने के लिए मजबूर करते हैं। "मेरे एक तरफ थी स्विट्ज़रलैंड की चकाचौंध रईसी, अद्भुत सौंदर्य, हर तरह की अंतहीन आज़ादी, जीने और भोगने की उद्दाम आकांक्षा, यौवन की पुकार और नवजीवन के झिलमिलाते स्वप्न। दूसरी तरफ थी कडुए नीम–सी भारत की जिन्दगी, खूनखराबा, दंगे, कमरतोड़ खटनी, कबूतरों के दड़बे जैसे घर, धूल–गर्द, पसीना, रूखा–सूखा खाना, बदबू, धक्क–मुक्की और ढेरों बंदिशें।"[2] अविनाश के विदेश जाने के बाद उसे पता चला कि वहाँ पर अकेला रहकर जीना दुश्कर है। अपनी माँ से दूर दूसरे देश का माहौल देखकर उसे आश्चर्य हुआ। स्विट्ज़रलैंड के बारे में बताते हुए अविनाश कहता है, "बेरोज़गारी के बाद जो चीज़ यहाँ सबसे ज्यादा हिट करती है वो है यहाँ की ठंडी ख़ामोशी और दिल को दहला देनेवाला अकेलापन। कान को बहरा और आत्मा को सुन्न कर देता है यहाँ का सन्नाटा।"[3] अविनाश जैसे महत्वाकांक्षी युवक परदेश में अनेक समस्याओं का सामना करते हुए जीने के लिए बाध्य हो जाते हैं। वे तो अपने देश में तभी वापस लौट आते हैं जब उनको भावनाओं के स्तर पर बांधनेवाला कोई धागा हो। अविनाश भी तो अपनी माँ को मिलने के लिए वापस लौट आया था। जब माँ घर पर नहीं मिली, पड़ोसन आशा आंटी ने उसे बताया कि वह मराठवाडा में स्थित पारतुल

गाँव गयी है, तो वह पारतुल जाने के लिए निकल गया। भारत में जब से बाज़ारवाद ने अपनी जडें जमा लीं तब से औद्योगीकीरण बढ़ता चला गया। इससे दिल्ली, बंबई, कलकत्ता जैसे शहरों में शहरीकरण ने गति पकड़ ली। ऊँची–ऊँची पहाडियाँ, जंगल, पठार जैसे सारे के सारे इलाके कॉंक्रिट के जंगलों में तब्दिल हो गए। यहाँ के पशु–पक्षियों का घर उज़ड़ गया। जंगली जानवर बस्तियों में घुमने लगे और लोगों पर हमले करने लगे। यह सिर्फ़ बड़े शहरों की बात नहीं है, आज यह दृश्य संपूर्ण भारत का दृश्य बन रहा है। सरकार नए–नए प्रकल्पों की घोषणा कर जंगल उजाड़ रही है। आदिवासियों को स्थलांतरण करने के लिए बाध्य किया जा रहा है जिसके कारण पर्यावरण का ह्रास हो रहा है। लेखिका लिखती है, "इनकी जमीन की भूख मरती ही नहीं, कभी समुद्र पी रहे हैं तो कभी जंगल निगल रहे हैं। ये सोच नहीं सकते कि जिन जंगलों को काट रहे हैं, वे ऑक्सीजन कितना दे रहे हैं। इनकी निगाह में सिर्फ़ यह रहता है कि ज़मीन नोट कितने पैदा कर रही है, दूसरे साँस ले सके इसकी इन्हें परवाह कहाँ है, हालत यह है कि आजकल तेंदुए आदमियों की बस्ती में आ रहे हैं, आहार की खोज में"[4] पशुओं के घर उज़ड़ने के बाद लोगों की बस्ती ही तो रह जाती है उनके लिए। जिस तेज़ी से जंगलों को खतम किया जा रहा है, उससे ऐसा लगता है कि भविष्य में ऑक्सीजन के सिलेंडर पीठ पर लादकर ही हमें घुमना पड़ेगा।

मधु जी ने अपने उपन्यास में सिर्फ़ किसान जीवन ही नहीं बल्कि मनुष्य के जीवन से जुडी अनेक बातों को, मनुष्य की संवेदशीलता को बचानेवाली, उसके जीवन को सुंदर और साथ ही बदसूरत बनानेवाली अनेक स्थितियों का चित्रण अपने उपन्यास में किया है। बलखडे महाराष्ट्र का ही किसानों का गाँव है। लेखिका इस गाँव का वर्णन करती हुई लिखती है, "उत्तरी भारत के किसी भी गाँव जैसा गाँव, दरिद्रता और गंदगी की विज्ञापनबाजी करता! सड़क पर गिरे कुछ पत्थर। जगह–जगह कचरे के ढेर, ढेर में मुँह मारते कुत्ते। रुनझुन करती बैलों की जोड़ी। मीलों तक फैले सूखे कपास के खेत ..."[5] आज सिर्फ़ गाँव में ही नहीं बल्कि शहर में भी कचरे का ढेर लगा रहता है। इससे निकलनेवाली बदबू तो जीना हराम कर देती है। पहले हम अशिक्षित लोगों को इसके लिए दोष देते थे। आज देखा जाए तो अशिक्षित लोगों से ज्यादा शिक्षित लोग ही गंदगी फैलाने में बड़ी भूमिका निभा रहे हैं। गोमाता को पूजनेवाले लोग गाय द्वारा दूध देना बंद होते ही उसको रास्तों के हवाले कर देते हैं। लेखिका लिखती है, "गौ पूजक इस धार्मिक देश में भगवान, इनसान और गाय–बैल साथ–साथ रहते हैं एक ही घर में, पर चरने के लिए यहाँ के मरियल गाय–बैलों को सड़कों पर छोड दिया जाता है। घास के साथ कचरा, कूड़ा और प्लास्टिक खाने के लिए।"[6]

बलखडे गाँव के दिलीप उद्रराव की पत्नी शोभा को अविनाश की माँ ने अपनी बेटी माना था। दिलीप ने ट्रेक्टर खरीदने के लिए बैंक से कर्जा लिया था। चार लाख का कर्जा चुका न पाने के कारण उसने आत्महत्या कर दी। गाँव के अन्य लोगों में 'प्रोग्रेसिव फार्मर ऑफ द इयर' का अवार्ड पानेवाला काशी विश्वेश्वर राव, अरुणगिरि जैसे किसान लोग व्यवस्था के शिकार बन गए। स्विट्ज़रलैंड और भारत की तुलना करते हुए अविनाश सोचता है, "पर क्या फ़र्क है स्विट्ज़रलैंड की आत्महत्याओं में और यहाँ की आत्महत्याओं में फ़र्क तो है। वहाँ रूह के मर जाने पर मौत रास्ता दिखाती है जबकि यहाँ अस्तित्व के ही मिट जाने की आशंका और चरम विवशता के पल या अस्तित्व के ही अर्थहीन हो जाने की चरम हताशा के पल मौत के रास्ते की ओर ले जाते हैं। वहाँ रंगीनियाँ शर्मिंदा हैं, यहाँ श्रम शर्मिंदा है। वहाँ आत्महत्या व्यक्ति का अपना वरण है। यहाँ यह व्यवस्था द्वारा दिया गया है।"[7]

अपने सुंदर जीवन का अंत करना तो कोई नहीं चाहेगा पर किसान जब सारे रास्तों को अपने लिए बंद पाता है, तो सिर्फ़ मौत का रास्ता उसे नज़र आता है। किसान जीवन की जटिलताओं की ओर ध्यान खिंचते हुए लेखिका ने इनकी आत्महत्याओं से संबंधित कई कारणों को हमारे सामने रखा है। किसानों को सपने दिखाकर लालच दिया जाता है कि अमुक फ़सल लगाने से ज्यादा फायदा होगा। कर्ज़ा देनेवाले जमीन या संपत्ति रेहन रखकर कर्ज़ा देते हैं। प्राकृतिक आपदाओं के कारण किसान फँस जाता है। वह कर्ज़ा चुका नहीं पाता तब गुंडे लोग किसानों को डरा धमकाकर कर्ज़ा वसुलने आते हैं। किसानों की इज्जत उतारी जाती है, उनके घर के बाहर नोटिस चिपकाई जाती है, इसी के डर से किसान आत्महत्या करने के लिए तैयार हो जाते हैं। लेखिका के अनुसार 90 के दशक से पहले किसानों की किसी तरह गुजर बसर होती थी पर उसके बाद खुले बाज़ार के कारण बाज़ार का चरित्र ही बिगड गया। गाँव का ढाँचा ही चरमरा गया। "वो ग्रामीण संस्कृति ही चौपट हो गयी। इसी दशक ने किसान को इज़्ज़त से ज़िल्लत की दुनिया में पहुँचाया है, फिर भी 1998 तक सप्ताह में एक–आध किसान की 'सुसाइड' की खबर आती थी। 2002 के बाद यह हुआ कि हर दिन एक शेतकरी आत्महत्या कर रहा है। लेकिन अभी तो हाल यह है कि हर जिले से हर दिन तीन–तीन और कभी तो चार–चार आत्महत्याओं की ख़बर आ रही है।"[8]

कपास की खेती करनेवाले किसानों की हालत तो गंभीर है। कभी सूखा तो कभी अतिवर्षा से खेती का नुकसान होने

पर उनके लिए आत्महत्या ही रह जाती है। मौसम की कृपा से फ़सल अच्छी हुई भी तो अच्छे दाम नहीं मिलते। कम दामों पर न बेचने की सोचे तो गोदाम की व्यवस्था नहीं है। बारिश के कारण उसको खेत या आँगन में भी नहीं छोड़ सकते। फ़सल बेची नहीं तो कर्ज़ा कैसे चुकाएँगे! ऐसे में किसानों की मजबूरी का फ़ायदा ठेकेदार उठाते हैं और किसानों की स्थिति में कोई सुधार नहीं आता।

कथा नायक अविनाश अपनी माँ की खोज करते–करते कामथड़ी पहुँच जाता है। वहाँ भी किसानों की अनेक समस्याओं से परिचित हो जाता है। कच्चा रास्ता, यातायात के साधनों में कमी, पानी की गिल्लत, योजनाओं की असफलता, सूखा, स्वास्थ्य की सुविधाओं का न होना आदि समस्याओं को देखकर उसे ताज्जुब होता है उन लोगों से जो गाँवों में इन हालातों में जीकर कृषि उपजाते हैं और कर्ज़ के बोझ से आत्महत्या करने के लिए मजबूर हो जाते हैं। कामथड़ी में अपने मामा के यहाँ भी अपनी माँ को न पाकर उसकी खोज में वह कन्याकुमारी चला जाता है, तो पाता है, माँ वहाँ से भी नदारद है। वहाँ से अपने बंबईवाले घर वापस लौटता है, तो अपने मामा, आशा आंटी से अपनी माँ की मृत्यु का सच उसे पता चलता है। उसकी माँ की यह इच्छा थी कि वह खुद किसानों की दुर्दशा को देखें और हो सके तो उनके लिए कुछ करें। माँ की सादगी, सामान्य लोगों के प्रति संवेदनशीलता, उनके लिए कुछ कर गुजरने की जिजीविषा को याद कर वह बहुत आश्चर्यचकित होता है।

वह भारत लौटते समय ही खुद को दोषी मान रहा था क्योंकि विदेश में जाकर उसे भौतिक स्थिरता तो मिली थी पर मानसिक संतुष्टि से वह वंचित रहा इसलिए जब अपने लोगों के लिए कुछ करने का मौका उसे मिला था, तो वह बहुत कुछ करना चाहता था। अपने मामा के साथ वह कामथड़ी लौटा और किसानों की समस्याओं से परिचित होने लगा। गाँव में होनेवाली किसानों की आत्महत्याओं को करीबी से उसने देखा, बिजली की, पानी की, रास्ते की, यातायात के साधनों की असुविधाओं को समझा और उसके हल निकालने का प्रयास करने लगा। सबसे पहले गाँववालों का विश्वास जीता और उन्हीं की मदद से उसने पक्का रास्ता बनाया। पक्का रास्ता बनने से यातायात में सुविधा हुई। किसानों की फ़सल को बाज़ार ले जाने में आसानी हुई। पानी की समस्या के कारण किसान अपने खेत में सिर्फ़ एक ही फ़सल उगा पाते थे। अगर उनको पानी की सुविधा मिलती तो किसानों को कृषि से फ़ायदे की संभावनाएँ बढ़ जाती थीं। अविनाश ने गाँव के पूराने तालाब की बात अपने मामा से सुन रखी थी। गाँववालों और पंचायत की सहायता से उसी तालाब को गहरा और चौड़ा बनाया इससे किसानों को गर्मी के दिनों में भी फ़सल उगाने के लिए आसानी हुई। आज हम सब प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करने में लगे हुए हैं। हमने पेड़ों को काटकर काँक्रिट के जंगल बनाए। पानी के लिए अनेक कुएँ खुदवाए और बहनेवाले झरनों को, तालाबों को, नदियों को नालों में बदल दिया। लगातार भूमिगत जल के उपयोग के कारण भूमिगत जलस्तर नीचे खिसकता जा रहा है। बारिश का पानी बचाने की बूँद–बूँद को सँभालने की कोशिश कोई करना नहीं चाहता। इसी बात पर विचार करते हुए लेखिका लिखती है, "विकास की आँधी में बर्बाद हो गए कुएँ।.... नए कुएँ बनवाना तो दूर जो पहले से थे उन्हें भी जमीन के लालच में पाट दिया गया।"[9] इसके समाधान की ओर इशारा करते हुए वह लिखती है, "बारिश की एक–एक बूँद को बचाया जाए .... गाँव–गाँव में जलाशय और नहर खुदवाई जाए और वर्षा के पानी का संरक्षण किया जाए।"[10]

हिन्दीकुंज.कॉम की साईट पर पाए जानेवाली पुस्तक समीक्षा में उपन्यास और लेखिका की कृषि से संबंधित जानकारी पर आक्षेप उठाया है। पर लेखिका का उपन्यास लिखने के उद्देश्य खेती की जानकारी देना नहीं बल्कि किसानों की समस्याएँ उजागर करना और उसपर समाधान प्रस्तुत करना रहा है। यूट्युब पर उपलब्ध लेखिका के साक्षात्कार को देखने के उपरांत यह समझ में आता है कि यह उपन्यास उनके आँखों देखे यथार्थ की ही उपज़ है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'ढ़लती साँझ का सूरज़' उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने किसान जीवन के यथार्थ को पाठक के सामने रखा है। किसानों की अनेक समस्याओं की ओर पाठक का ध्यान लेखिका ने खिंचा है। इन समस्याओं को भारतीय युवा ही अपनी जिम्मेदारी समझकर सुलझा सकता है। विदेश में बसे हुए अनेक युवा, भारतीयों के लिए कुछ करने की मंशा रखते हैं, उनकी मदद इस कार्य में ली जा सकती है। दूसरा मुद्दा है सामुहिकता का। जो समस्या अकेले नहीं सुलझा सकता, वह सामुहिक प्रयासों से सुलझाने की कोशिश करने से सुलझ सकती है। गाँव के लोग अशिक्षित होने के बावजूद समझदार और होशियार होते हैं। जरूरत होती है, उनका हौसला बढ़ाने की, प्रेरणा देने की। बाकी काम तो अपने आप हो जाता है। किसानों की आत्महत्याओं को रोकने के लिए आपसी प्रेम, करुणा, थोड़ी सहानुभूति और संवाद की जरूरत पर ज़ोर दिया गया है। यही तो वे साधन हैं जो मनुष्य को मनुष्य से जोड़ते हैं और उनकी उम्मीद बचाए रखते हैं।

अपनी मातृभूमि छोड़कर शहरों में या विदेश में बसे हुए युवकों को लेखिका आवाहन करती है कि उनमें स्थितियों को बदलने की क्षमता है और उनकी मातृभूमि को आज उनकी जरूरत है। जो जहाँ हैं वहाँ रहकर भी बदलाव लाने के लिए मदद कर सकता है। प्राकृतिक संसाधनों के अतिदोहन की ओर भी लेखिका ने पाठक को जागृत किया है साथ ही इसके बचाव के सुझाव भी दिए हैं। उपन्यास के अंत में लेखिका किसानों के प्रशिक्षण, किसान बचाओ क्लबों की स्थापना, कृषि उपज मंडलियों की स्थापना, महिलाओं के लिए सेल्फ हेल्प ग्रुप, महिला सशक्तिकरण जैसे विकल्पों को हमारे सामने रखते हुए समाज में बदलाव लाने की बात करते हुए दिखायी देती है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि उपन्यास का कथानक पाठक पर गहरा असर छोड़ता है। उपन्यास पाठक को जागृत करते हुए किसानों की स्थिति पर सोचने के लिए मजबूर करता है और किसानों की आत्महत्याएँ रोकने के लिए पाठक अपनी ओर से क्या योगदान दे सकता है, इस पर प्रकाश भी डालता है।

संदर्भ सूची

1. कांकरिया, मधु (2024) *ढलती साँझ का सूरज़.* राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. 19।
2. कांकरिया, मधु (2024) *ढलती साँझ का सूरज़.* राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. 36।
3. कांकरिया, मधु (2024) *ढलती साँझ का सूरज़.* राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. 36।
4. कांकरिया, मधु (2024) *ढलती साँझ का सूरज़.* राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. 41।
5. कांकरिया, मधु (2024) *ढलती साँझ का सूरज़.* राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. 47।
6. कांकरिया, मधु (2024) *ढलती साँझ का सूरज़.* राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. 48।
7. कांकरिया, मधु (2024) *ढलती साँझ का सूरज़.* राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. 59।
8. कांकरिया, मधु (2024) *ढलती साँझ का सूरज़.* राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. 65।
9. कांकरिया, मधु (2024) *ढलती साँझ का सूरज़.* राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. 164।
10. कांकरिया, मधु (2024) *ढलती साँझ का सूरज़.* राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. 164।

****